International Journal of Information Movement Vol.6 Issue V (September 2021)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 10-17

जीवन-संघर्ष के जीवंत दस्तावेज- 'सलाम' की कहानियॉं

डॉ. सुषमा ठाकुर
(संयुक्त प्राध्यापिका)
हिन्दी विभागाध्यक्षा
कुमारी विद्यावती आनंद डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय, करनाल (हरियाणा)
Email- sushmakva97@gmail.com

सार

देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में ओमप्रकाश बाल्मीकि का नाम एक ऐसा नाम है जिन्होंने भारतीय समाज के उस अंधकारमय यथार्थ को स्वयं जिया जो युगों से विकास रूपी प्रकाश की एक किरण को तरसता रहा, पीढ़ी–दर–पीढ़ी शोषण की चक्की में पिसता रहा । इस लेखक ने उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व किया जिसने कदम–कदम पर बुरी तरह कुचले जाने पर भी अपने व अपनों के साथ होने वाले अन्याय को 'अन्याय' कहने का साहस किया। हिन्दी साहित्य में इससे पूर्व भी कई साहित्यकारों ने समाज में किसी भी तरह के शोषण के विरोध में आवाज उठाई थी पर बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में जब **'दलित विमर्श'** का वजूद सामने आया, उसका कारण सम्भवतः ओमप्रकाश बाल्मीकि जैसे साहित्यकारों की रचनाऍं ही बनीं । इनका पहला कहानी संग्रह **'सलाम'** दलित जीवन की छटपटाहट, उसकी व्यथा की कहानियॉं कहता है। श्रद्धेय श्री राजेन्द्र यादव जी को समर्पित इस पुस्तक में राजेन्द्र जी ने इसके विषय में सटीकता से लिखा है– "इन कहानियों में वस्तुजगत का आंनद नहीं, दारूण दुख भोगते मनुष्यों की बेचैनी है।[1]" इस संकलन की चौदह कहानियॉं कहीं रूलाती हैं, कहीं झिंझोड़ देती हैं, कहीं आक्रोश से भर देती हैं और कहीं एक गहरी संवेदना पैदा कर मर्म पर मारक प्रहार करती हैं ।

पहली कहानी **'सलाम'** एक ओर समाज की अत्यन्त अपमानजनक रूढ़ियों के खिलाफ नई पीढ़ी का आक्रोश दिखाती है तो दूसरी ओर अपनी ही कमियों के कारण अपनी असहायावस्था का भी ज़िक्र करती है । कमल उपाध्याय अपने मित्र हरीश की बारात में शामिल होकर एक गॉव में जाता है । बारात रात को स्कूल के बरामदे में ठहरती है क्योंकि स्कूल के मास्टर जी कमरों की चाबी लेकर कहीं चले गए हैं (और ऐसा उन्होंने जानबूझ ही किया होगा...) । छोटे से बरामदे में बारात ठुँसी हुई है, यहॉ तक कि बेचारे दूल्हे और उसके मित्र को टॉगें फैलाकर लेटने तक की जगह नहीं मिल पाती । जैसे–तैसे रात कटती है । सुबह चाय पीने का आदी कमल स्कूल के पास की ही एक दुकान से चाय पीने जाता है तो उस के साथ बहुत बुरी बनती है । चायवाला जब यह जान लेता है कि कमल चूहड़ों की बारात का एक बाराती है तो वह कमल को चाय

देने से इन्कार कर देता है । कमल के यह बताने पर कि वह तो ब्राह्मण है, बूढ़ा चायवाला उसकी बेइज्जती करता है–''चूहड़ों की बारात में बामन? चायवाला कर्कशता से हॅसा ।

शहर में चूतिया बणाना... मैं तो आदमी कू देखते ही पिछाण (पहचान) लूँ ... कि किस जात का है? चायवाले ने शेखी बघारी ।

उनका वार्तालाप सुनकर राह चलते लोग ठिठककर मजा लेने लगे । ×× लोगों को देखकर चायवाले की बूढ़ी हड्डियों में जोश आ गया था । ×× बल्लू रांघड़ का रामपाल भी भीड़ देखकर ठिठक गया । ×× छूटते ही पूछा–चाच्चा कौन है यों? चायवाला और बिफर पड़ा– चूहड़ा है । खुद कू बामन बतारा है । जुम्मन चूहड़े का बराती है । ×× बुद्धू की दुकान पै तो मिलेगी न चाय चूहड़े–चमारों कू, कहीं और ढूंढ ले जाके । ×× कमल ने विरोध करने के लिए मुँह खोला–भाईयो ... ।

बात पूरी होने से पहले रामपाल ने डॉटा–ओ सहरी जनखे हम तेरे भाई हैं ? साले जबान सिंभाल के बोल ×× जाके जुम्मन चूहड़ें से रिश्ता बणा । इतनी जोरदार लौंडिया ले के जा रे हैं सहर वाले । जुम्मन के तो सींग लिकड़ आए हैं । अरे, लौंडिया को किसी गॉव में ब्याह देता तो म्हारे जैसों का भी कुछ भला हो जाता ... एक तीखी हॅसी का फव्वारा छूटा । ××

कमल को लगा जैसे अपमान का घना बियाबान जंगल उग आया है । उसका रोम–रोम कॉपने लगा । ×× उसने आस–पास खड़े लोगों पर नजर डाली । हिंसक शिकारी तेज नाखूनों से उस पर हमला करने की तैयारी कर रहे थे ।[2]''... शहरी ब्राह्मण कमल को पहली बार आभास हुआ कि उसका मित्र दलित हरीश अपने संघर्षों के बारे में कितना सच कहता था । ... अन्दर–ही–अन्दर कुढ़ता, भुनभुनाता कमल वापिस आकर पुनः चुपचाप बारात में शामिल हो जाता है । यहॉ उसे एक और अपमानजनक प्रथा के बारे में पता चलता है जिसे शिक्षित हरीश और उसके पिता नहीं निभाना चाहते । जुम्मन की घरवाली जिन–जिन घरों में काम करती थी, वे रॉघड़ थे । दलित परिवारों के दामाद या नई बहू को लेकर दलित परिवार को रॉघड़ों के दरवाजे–दरवाजे घूमना था ताकि वहॉ से छोटे–मोटे उपहार स्वरूप मिला कपड़ा, बर्तन, पैसे एकत्रित किए जा सकें लेकिन पढ़े–लिखे सरकारी कर्मचारी हरीश को यह प्रथा उनका आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश सी लगती थी और उसने इसे निभाने से साफ इन्कार कर दिया था जिसे रॉघड़ अपना अपमान समझ रहे थे। हरीश अपनी ज़िद पर अड़ा था लेकिन तभी परिवार के एक छोटे लड़के ने खाना खाने से मना कर दिया क्योंकि रोटी बनाने वाला मुसलमान था । हरीश और कमल अवाक इन सब दृश्यों को देखते रह गए । कहॉ जा रहा है हमारा समाज ... कौन से उत्थान की उम्मीद करें । जहॉ लोगों की नस–नस में समाया हुआ है–वर्ग भेद, जाति भेद और न जाने कैसे–कैसे और कौन–कौन से भेद!

'सलाम' एक साथ कई तरह की सामाजिक दुर्व्यवस्थाओं के चित्र दिखाती कहानी है । इसे पढ़कर एक लावा

सा उठता है भीतर, जो फूट पड़ना चाहता है लेकिन स्थान नहीं पाता, फूटकर बिखरने को भी स्थान नहीं । **'सपना'** कहानी भी जातिगत भेदभाव, छूत–अछूत विषय को लेकर लिखी गई कथा है । किसी एक जगह मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा इकट्ठे बनने का सपना देखां जाता है । मन्दिर बनते हुए पहले देवता के नाम पर झगड़ा होता है, कोई बालाजी की मूर्ति चाहता है, कोई शिव की और कोई लक्ष्मीनारायण की । मन्दिर बनता है सब वर्गों के प्रयासों से, पर आखिर में वर्ग के नाम पर झगड़ा हो जाता है । उच्च वर्ग के लोग अपना आधिपत्य रखना चाहते हैं और दलित समुदाय के लोगों को नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं जिसे वे सहन न कर स्थिति का मुकाबला करते हैं । जहॉ अन्याय का विरोध होगा, वहॉ संघर्ष अवश्यंभावी है–''शोर–शराबे के बीच सभी कुछ क्षण–भर में धराशायी हो गया था । ×× खाली कलश लुढ़के पड़े थे । नदियों और समुद्र का जल एकाकार होकर जमीन में समा गया था । जगह–जगह जूते चप्पल बिखरे पड़े थे। ×× समूचे वातावरण में दहशत और तनाव की छाया पसर गई थी । मन्दिर में रखी बालाजी की पाषाण प्रतिमा समूचे परिदृश्य को जड़वत देख रही थी ।''[3]

'बैल की खाल' समाज का वह अति उपेक्षित वर्ग; जो मरे पशुओं को उठाने, उनके चमड़े को साफ कर उसे बेच कर अपना घर खर्च चलाता है और साथ ही सम्पन्न लोगों की भरपूर गालियॉ भी खाता है, उस वर्ग से सम्बद्ध काले और भूरे की एक अति संवदेनशील कथा है । गॉव के पंडित बिरिज मोहन का एक बैल कुऍ के पास गिरकर मर गया, उसे उठाने को काले और भूरे की आवश्यकता पड़ती है लेकिन वे दोपहर तक किसी को दिखाई नहीं देते । दोपहर तक मरा बैल गंधाने लगता है तब वे कहीं से आकर मृत बैल की अकड़ती देह को किसी तरह खींचतान कर गॉव से बाहर एक तालाब पर ले जाते हैं जहॉ उसकी खाल आदि काटने का काम बड़े जतन से करते हैं क्योंकि आवारा कुत्तों का एक समूह और असंख्य चीलें बैल को नोंचने को तैयार हैं । बहुत कठिनाई से वे बैल की खाल निकालने में सफल हो जाते हैं लेकिन उन्हें खाल को शहर ले जाने के लिए कोई साधन नहीं मिलता तभी एक तेज रफ्तार ट्रक खेतों से चरकर लौटती गऊओं में से एक बछड़ी को कुचल कर चला जाता है । बैल की खाल बेचकर अपने घरों में चूल्हा जलने की आशा में बैठे काले और भूरे खाल छोड़कर बछड़ी को बचाने का भरसक प्रयत्न करते हैं लेकिन बछड़ी मर जाती है । भरे पेट ही मानवता का पाठ पढ़ना अथवा पढ़ाना सम्भव है, इस उक्ति को झुठलाते हुए ''काले बछड़ी की पीठ सहला रहा था । जैसे उसे हौंसला बॅधा रहा हो । बछड़ी के मुॅह से खून रिसकर मिट्टी में बहने लगा था । ×× तू यहॉ ठहर ..मैं जाता हूॅ डॉक्टर को लाने । काले की आवाज़ में उत्तेजना थी । ×× गॉव वहॉ से करीब एक कोस दूर था । ×× अभी दस–पंद्रह कदम भी नहीं गया था, भूरे की आवाज आई– काले जल्दी आ ...

काले उलटे पॉव लौटा ।

बछड़ी का बदन ऐंठकर शांत हो गया था ।

चुप्पी तोड़ी काले ने ×× भूरे तू यहीं ठहर मैं गॉव में खबर करके आता हूँ । ×× पुलिया पर रखी बैल की खाल पर काले ने नजर डाली । चादर में बँधी बैल की खाल गंधियाने लगी थी।''[4]

बैल की खाल उनके घरों में चूल्हा जलाने का कारण बन सकती थी जिसे उन्होंने कई घंटों का कड़ा परिश्रम कर बेचने योग्य बनाया था लेकिन उसे अनदेखा कर ये कौन सी दुनियॉ के जन्तु हैं जो इतने अभावों में रह कर भी मानवीयता को छोड़ नहीं पाते । ऐसी दुनिया में जहॉ जीते–जागते लोगों पर कोई दया नहीं दिखाता; ये लोग एक मरी हुई बछड़ी के प्रति इतने संवेदनशील हैं । मानवता का पुजारी कोई भी हो सकता है ठीक वैसे ही जैसे अमानवीय व्यवहार भी कोई भी कर सकता है चाहे वह किसी भी धर्म, जाति, संप्रदाय, वर्ग, वर्ण, लिंग का ही क्यों न हो ।

पुराने सड़े–गले रीति–रिवाजों की व्यर्थता को दिखाती है कहानी– **'डर'** । मॉ द्वारा मजबूर किए जाने पर दिनेश माई मदारन की पूजा करने क लिए सूअर का बच्चा खरीदन जाता है । कालू, जिसने सूअर पाल रखे हैं, उससे चार सौ रुपये में सूअर का बच्चा खरीद भी लेता है लेकिन बच्चे को मारने से पहले कालू कहीं काम से चला जाता है तो मजबूरन दिनेश को ही उसे पकड़ना, मारना और दूणना पड़ता है । काट–पीट कर बोरे में भरकर वह मॉस को शहर की कालोनी में स्थित अपने घर ले आता है । वह तब तक भयभीत ही रहता है जब तक पूजा का काम पूरा नहीं हो जाता । सूअर को मारने, दूणने का उसका अनुभव उसे भीतर तक हिला देता है, यहॉ तक कि वह मानसिक रूप से विक्षिप्त सा अनुभव करता है । परम्पराओं के नाम पर हमारी रूढ़ियॉ कहीं–कहीं इतनी क्रूर हैं कि सभ्यता की ओर बढ़ रही नई पीढ़ी को पुनः आदिम युग में खींच ले जाती हैं । बेचारा दिनेश उन्हीं परम्पराओं की क्रूरता की बलि चढ़ता दिखाई देता है, पूजा के बाद उसकी स्थिति का ज़िक्र करते हुए रचनाकार लिखता है–''अभी ठीक से झपकी भी नहीं आई थी कि वह हड़बड़ाकर उठ बैठा । उसे लगा मादा सूअर लाल–लाल ऑखें और लंबे–लंबे दॉत निकाले सामने खड़ी है । उसके पीछे तिवारी हाथ में लम्बा छुरा लिए दिनेश की ओर बढ़ रहा है। तिवारी की ऑखों में तिरस्कृत कर देने वाली घृणा भरी हुई थी । ××× दिनेश उठकर दरवाजे की ओर भागा ×× मादा सूअर की घर्र–घर्र आवाज के साथ तिवारी का क्रूर अट्टहास उसका पीछा कर रहा था । ''[5]

प्राचीन अटपटी अथवा क्रूर रूढ़ियों को छोड़कर यदि एक पीढ़ी सहजता से आगे बढ़ना चाहती है तो यह भी कितना दुश्कर हो सकता है; यह कहानी बड़ी सहजता से दिखाती है ।

'कहॉ जाए सतीश' और **'खानाबदोश'** इतने बड़े संसार में अपने लिए एक सुरक्षित कोना तलाशते पात्रों की कथाएँ हैं, जहॉ वे सुकून की ज़िंदगी जी सकें । पहली कहानी में एक दिन मिसेज पंत के घर का दरवाजा ज़ोर –जोर से खटखटाया जाता है । बाहर देखने पर उन्हें पता लगा कि एक फटेहाल दंपति सतीश नाम

के लड़के के बारे में पूछताछ कर रहा है और यह वही सतीश है जो मिसेज पंत के यहॉ पिछले चार महीने से किराएदार के रूप में रह रहा है । सतीश दिन में किसी स्कूल में पढ़ाता है और शाम को किसी बल्व फैक्टरी में काम करता है । वह बहुत ही शरीफ और समझदार लड़का है, यहॉ तक कि मिसेज पंत की सातवीं कक्षा में पढ़ने वाली बेटी ने राखी बॉधकर उसे भाई बना लिया है । बाहर आए दंपति से थोड़ी देर बातचीत करने पर मिसेज पंत को पता लगता है कि वे सतीश के माता–पिता हैं । कई महीने पहले सतीश ने पता नहीं क्यों घर छोड़ दिया था और वे तब से उसे ढूँढ रहे हैं । मिसेज पंत यह सब जानकर बुरी तरह चिढ़ जाती हैं और उनकी नज़र में वही समझदार शरीफ सतीश गिर जाता है । वे बहुत घृणा से बाहर सूख रहे सतीश के कपड़ों को डंडे से उठाकर एक कोने में कर देती हैं । उन्हें सतीश पर बहुत गुस्सा आता है कि उसने अपना एस.सी. होना उनसे छिपाया । मिस्टर पंत के घर लौटने पर वे आग–बबूला हो सतीश और उसके मॉ–बाप के बारे में उन्हें सब बताती हैं । मिस्टर पंत समझा–बुझाकर सतीश के माता–पिता को वापिस भेज देते हैं । मिसेज पंत बौखलाई हुई सतीश के लौटने का इंतजार करती हैं । सतीश जब रात होने पर घर लौटता है तो बाहर से ही उनके कहे कुछ ऐसे वाक्य सुन लेता है जिनसे उसे आभास हो जाता है कि उसके घरवालों को उसका पता मिल गया है । वह उल्टे पॉव फैक्टरी में पनाह मॉगने चल देता है । गोदाम पहुँचकर वह बहुत दयनीयता से फैक्टरी मालिक ऐजाज साहब से रात को फैक्टरी में रूकने की इजाजत मॉगता है तो वे कहते है–" क्या? फैक्टरी में रहोगे रात भर?

लेकिन क्यों? आज घर नहीं जाओगे?

कौन से घर जाऊं साहब? ... बाप का घर इसलिए छोड़ा कि वे मुझे नगरपालिका में सफाई कर्मचारी की नौकरी दिलवाना चाहते थे । वे रिटायर होने वाले हैं । वे अपने स्थान पर मुझे रखवा देने के लिए भागदौड़ कर रहे थे । उन्होंने नगरपालिका के साहब से बात भी कर ली थी । दो हजार की बात की थी । ×× दो हजार रुपये देकर जिन्दगी भर के लिए हाथ में झाड़ू आ जाएगी। वे चाहते हैं कि पढ़ाई–लिखाई छोड़कर इस नौकरी को कर लूँ । साहब, मैं सफाई कर्मचारी नहीं बनना चाहता ... मैं पढ़ना चाहता हूँ ... जिस मुहल्ले में हम रहते हैं, वहॉ मेरा दम घुटता है । इसलिए नहीं कि वे सब गरीब लोग या छोटे लोग हैं बल्कि इसलिए कि जिस तरह का जीवन वे जीते हैं– मैं उससे छुटकारा पाना चाहता हूँ । वे अपनी तकलीफों के इतने आदी हो गए हैं कि उसे अपनी नियति मान बैठे हैं । उनके भीतर हीनता बोध जड़ें जमा चुका है । जिससे बाहर निकलकर ही दुनिया को देखा जा सकता है । हजारों साल से मिट्टी में दबे लोहे के टुकड़े की मानिंद उनकी सोच को भी जंग लग गया है । ×× पंत जी ने कभी पूछा नहीं तो क्या बताता? ...मेरी परीक्षाएँ पास हैं ... मुझे रहने की जगह चाहिए । साहब क्या मैं सिर्फ सफाई कर्मचारी ही बनने के लिए पैदा हुआ हूँ । ××सतीश की ऑखों में ऑसुओं का सैलाब उमड़ रहा था ।"[6] ... लेकिन एजाज साहब ने बिना

लाग–लपेट के सतीश को फैक्टरी में रहने की जगह देने से मना कर दिया । बेचारा सतीश निराश होकर आधी रात में सुनसान सड़क पर खड़ा इसी चिन्ता में है कि वह कहॉ जाए–सब रास्ते उसके लिए बन्द हैं । **'खानाबदोश'** कहानी में एक गरीब दम्पति सुकिया और मानो एक भट्टे पर काम करने आते है। उनका रहन–सहन कुछ ऐसा है–" एक कतार में बनी छोटी–छोटी झोंपड़ियों में टिमटिमाती डिबरियॉ भी इस अन्धेरे से लड़ नहीं पाती थी । दड़बेनुमा झोंपडियों में झुककर घुसना पड़ता था । झुके–झुके ही बाहर आना होता था । भट्टे का काम खत्म होते ही औरतें चूल्हा–चौंका सम्भाल लेती थी । कहने भर के लिए चूल्हा–चौका था । ईंटों को जोड़कर बनाए चूल्हे में जलती लकड़ियों की चिट–चिट जैसे मन में पसरी दुश्चिंताओं और तकलीफों की प्रतिध्वनियॉ थी जहॉ सबकुछ अनिश्चित था ।"[7] ... इन्हीं अभावों में रहते–रहते मानो एक दिन लाल–लाल ईंटों वाले अपने छोटे से घर का सपना पाल लेती है । दोनो पति–पत्नी जी तोड़ दोगुना परिश्रम करते हैं ताकि ज्यादा–से–ज्यादा बचत कर सकें लेकिन मालिक के पुत्र सूबेसिंह की बुरी नज़र मानो पर पड़ जाती है, वह उसे अपने जाल में फॅसाने का भरसक प्रयत्न करता है । सुकिया और मानो सतर्क हो जाते हैं । लेकिन धीरे–धीरे परिस्थितियॉ उनके विपरीत होती चली जाती हैं आखिर एक दिन जब वहॉ रहकर मेहनत करके खाना भी उसके लिए दूभर हो जाता है तब सकिया को वह जगह छोड़ देने का कठोर निर्णय लेना पड़ता है "उसे लगने लगा था, जैसे तमाम लोग उसके खिलाफ हैं । तरह–तरह की बाधाऍ उसके सामने खड़ी की जा रही हैं । वहॉ रूकना उसके लिए कठिन हो गयरा था । उसने मानो का हाथ पकड़ा–चल! ये लोग म्हारा घर ना बणने देंगे । ... पक्की ईंटों के मकान का सपना उनकी पकड़ से फिसल कर और दूर चला गया था ।

भट्टे से उठते काले धुऍ ने आकाश तले एक काली चादर फैला दी थी । सब कुछ छोड़कर मानो और सुकिया चल पड़ थे । एक खानाबदोश की तरह जिन्हें एक घर चाहिए था, रहने के लिए । पीछे छूट गए थे कुछ बेतरतीब पल, पसीने के अक्स जो कभी इतिहास नहीं बन सकेंगे । खानाबदोश जिन्दगी का एक पड़ाव था यह भट्टा ।"[8]

'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' और **'अंधड़'** अन्याय की इंतहा की कहानियॉ हैं । एक सरल लोगों की सरलता का और सामाजिक वर्ण–व्यवस्था का फायदा उठाकर भोले लोगों का शोषण करने की कथा है और दूसरी एक दलित नौजवान के साथ होने वाली धूर्तता व अन्याय की कथा है । 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' में सुदीप सरकारी नौकरी लगने के बाद पहली बार मिली तनख्वाह लेकर अपने गॉव, अपने घर लौटता है । रास्ते में उसे अपना गॉव के स्कूल में दाखिल होना, दाखिला दिलवाने के लिए हाथ जोड़े पीठ झुकाए पिता का स्कूल के मास्टर के आगे गिड़गिड़ाना, पिता का वह दयनीय चेहरा व मुद्रा; सब याद आता है । स्कूल में पढ़ते हुए एक बार मास्टर जी द्वारा पच्चीस का पहाड़ा याद करने का गृहकार्य मिला । घर में पहाड़ा याद करते हुए सुदीप ने जब पच्चीस चौका डेढ़ सौ कहा तब उसे पिता ने टोका कि सुदीप ने ज़ोर देकर कहा तो पिता ने

उसे एक घटना सुनाई– " दस साल पहले की बात है । ×× तेरी महतारी बीमार पड़गी थी बचने की उम्मीद न थी । सहर के बड़े डॉक्टर से इलाज करवाया था । सारा खर्च चौधरी ने ही तो दिया था । पूरा सौ का पत्ता ... यो लंबा लीले (नीले) रंग का लोट (नोट) था । डॉक्टर की फीस, दवाइयॉ सब मिलकर सौ रुपये बणे थे । जब तेरी मॉ ठीक–ठाक होके चलण–फिरण लगी तो मैं चार महीने बाद चौधारी जी की हवेली में गया । दुआ–सलाम के बाद मैंने चौधरी जी ते कहा । चौधरी जी मैं गरीब आदमी हूँ । थारी मेहरबानी से मेरी लुगाई की जान बच गई । वह जी गई वरना मेरे जातक (बच्चे) बिरान हो जाते । तमने सौ रुपये दिए ते । उनका हिसाब बता दो ×× चौधरी जी ने कहा ×× सौ रुपये पर हर महीने पच्चीस रुपये ब्याज के बनते हैं । चार महीने हो गए हैं । ब्याज–ब्याज के हो गए हैं पच्चीस चौका डेढ़ सौ । तू अपना आदमी है तेरे से ज्यादा क्या लेणा । सौ में से बीस रुपये कम कर देणा । बीस रुपय तुझे छोड़ दिए । बचे एक सौ तीस, चार महीने का ब्याज । एक सौ तीस अभी दे दे बाकी रहा मूल, जिब होगा दे देना।"[9] ... सुदीप का पिता आज तक चौधरी के अहसान तले दबा रहा, पढ़ा–लिखा सुदीप उसे अब तक की जिन्दगी में यह समझानें में असमर्थ रहा था कि पच्चीस चौका डेढ़ सौ नहीं, सौ होते हैं । अपनी पहली तनख्वाह में से सौ रुपये लेकर पच्चीस–पच्चीस की चार ढ़ेरियॉ बनाकर वह पहली बार उसे समझा पाया था सही गिनती । सुदीप कहानी में एक जगह कहता है कि एक साथ इतने पैसे कभी घर में हुए ही नहीं कि वह पिता को असलियत समझा पाता । पिता की नज़र में तो चौधरी साहब महान ही बने हुए थे लेकिन अब उनकी ऑखें खुली तब उनके मुँह से निकला– "कीड़े पड़ेंगे चौधरी ...कोई पानी देने वाला नहीं बचेगा ।"[10] सरल, सीधे लोगों को लूटने का, उनकी खाल तक खींच लेने का यह सिलसिला सूदखोरों अथवा शोषकों द्वारा सैंकड़ों बरस तक जारी रहा जब तक कमजोर वर्ग शिक्षित नहीं हो गया, जब तक वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हो गया, जब तक उसने विद्रोह की आग नहीं सुलगा दी, जब तक उसने शोषण के विरोध का बीड़ा नहीं उठा लिया । ... हालांकि कहीं उसे कुचल दिया गया, कभी वह सफल भी हुआ । 'कुचक्र' ऐसे ही एक दलित युवा आर.बी. की कथा है जो अपने कार्यस्थल पर अपने आस–पास फैले कुचक्र का शिकार होता है । अपना काम ईमानदारी से करते हुए अन्याय के विरोध में आवाज़ बुलंद करते हुए भी वह बार–बार न चाहते हुए भी अपने सहकर्मियों द्वारा बनाई व्यूह रचना में फॅस जाता है । वे उसके दलित होने के कारण उसकी पदोन्नति को स्वीकार ही नहीं कर पाते । सम्भवतः यही कारण होता होगा जब बहुत से दलित समाज में अपनी पहचान छिपाकर रहते होंगे । सभी आर.बी. जैसे साहसी तो नहीं हो सकते यद्यपि उसे भी अपनी प्रमोशन गॅवाकर अपने साहस और विद्रोह की कीमत चुकानी ही पड़ती है । पहले अपनी जड़ों से कटकर एक साधन सम्पन्न इज्जतदार ज़िन्दगी जीने की चाह की कहानी है–'अंधड़' । समय के साथ जब व्यक्ति को अपनी गलती की अहसास होता है तब वह समझ पाता है कि यह सब करके उसने

कितनी बड़ी भूल की है । अपनी पहचान, अपनी ज़मीन या अपनों को छोड़कर जो ज़िन्दगी जी जाती है, वह कितनी बेरंग, कितनी वीरानी और कितनी एकाकी हो सकती है; कभी –न–कभी व्यक्ति अवश्य महसूस करता है ।

छुआछूत और विभिन्न आधारों पर होने वाला भेदभाव हमारे समाज का कोढ़ है । जिसे ठीक करना बहुत आवश्यक है अन्यथा समाज और देश की तरक्की होना असम्भव ही होगा । यद्यपि समय बदल रहा है, बहुत से परिवर्तन हो चुके हैं, बहुत से अभी जारी हैं । शुद्र और स्त्री; ये दोनों हमारे रूढ़िवादी समाज में लम्बे समय तक शोषण के शिकार बने हैं लेकिन आज समूचे परिदृश्य में बदलाव स्पष्टतः लक्षित है। आरक्षण जैसी नीतियों और शिक्षा के प्रसार ने परिवर्तन की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आधुनिकता की ओर बढ़ता समाज जागरूक हो रहा है । शासन, प्रशासन अपनी तरह से प्रयासरत हैं, सुधारक अपनी तरह से, कला के विविध रूप अपनी तरह से, साहित्य–मीडिया, सोशल मीडिया अपनी तरह से और शोषित अपनी तरह से । एक सुनहरी सुबह का होना अवश्यंभावी है जिसके प्रकाश में ऊँच–नीच, बड़े–छोटे, पुलिंग–स्त्रीलिंग, काले–गोरे, पूर्वी पश्चिमी की और न जाने कौन–कौन सी दीवारें स्वयंमेव ढह जाएंगी और मनुष्य बस मनुष्य है, यह सत्य स्थापित हो पाएगा । इस सब में दिशा दिखाने वालों का योगदान अविस्मरणीय रहेगा । ओमप्रकाश बाल्मीकि का नाम भी इन्हीं में से एक है ।

सन्दर्भ सूची

कवर पेज, सलाम (लेखक– राजेन्द्र यादव), पृष्ठ कवर पेज

सलाम, सलाम (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 13

सपना, सलाम (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 51

बैल की खाल, सलाम (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 38

डर, सलाम (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 47

कहॉ जाए सतीश, सलाम (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 55

खानाबदोश, सलाम (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 123

खानाबदोश, सलाम (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 132

पच्चीस चौका डेढ़ सौ, सलाम (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 81

पच्चीस चौका डेढ़ सौ, सलाम (लेखक– ओमप्रकाश बाल्मीकि), पृष्ठ संख्या 84